https://www.echetana.com/Vol.-10, No.-04, Oct.-Dec. 2025, pp. 183-187

CHETANA
International Journal of Education (CIJE)

Peer Reviewed/Refereed Journal
ISSN : 2455-8279 (E)/2231-3613 (P)

Impact Factor
SJIF 2025-8.445

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

जैविक उत्पत्ति, जिजीविषा, लैंगिक भेदभाव और सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में बेटियाँ-: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ रामावतार गोदारा
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान (मानित विश्वविद्याल)
गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर (चूरू) राजस्थान
Email: ramawatargodara@gmail.com, Mobile-9351046609

First draft received: 05.11.2025, Reviewed: 09.11.2025
Final proof received: 09.11.2025, Accepted: 20.12.2025

सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र "जैविक उत्पत्ति, जिजीविषा, लैंगिक भेदभाव और सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में बेटियाँः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" बालिकाओं की स्थिति को जैविक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आयामों के अंतर्संबंध में समझने का प्रयास करता है। यह अध्ययन इस मूल अवधारणा पर आधारित है कि बेटियों का जन्म जैविक रूप से एक प्राकृतिक और वैज्ञानिक प्रक्रिया है, किंतु सामाजिक–सांस्कृतिक संरचनाएँ इसे मूल्यांकन और भेदभाव के दायरे में परिसीमित कर देते हैं। समाज में व्याप्त लैंगिक असमानताएँ बालिकाओं के जीवन–अनुभवों को गहराई से प्रभावित करती हैं, जिससे उनकी जीवन–संघर्ष क्षमता अर्थात जिजीविषा का निर्माण होता है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि जैविक दृष्टि से लिंग–निर्धारण पूर्णतः गुणसूत्रीय प्रक्रिया है, जिसमें माता की कोई निर्णायक भूमिका नहीं होती। इसके बावजूद सामाजिक अज्ञान और रूढ़ मान्यताओं के कारण बेटियों को जन्म के लिए दोषी ठहराया जाता है। यही दृष्टिकोण लैंगिक भेदभाव को जन्म देता है, जो शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, सुरक्षा और निर्णय–निर्माण जैसे क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। शोध–पत्र में जिजीविषा को बालिकाओं की उस अंतर्निहित शक्ति के रूप में देखा गया है, जो उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संघर्ष करते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। सामाजिक उपेक्षा, सीमित अवसर और पारिवारिक अपेक्षाओं के बावजूद बालिकाएँ साहस, सहनशीलता और आत्मबल का परिचय देती हैं। यह जिजीविषा केवल व्यक्तिगत गुण नहीं, बल्कि सामाजिक अनुभवों से निरंतर विकसित होने वाली क्षमता है। अध्ययन में यह भी विश्लेषित किया गया है कि सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ– जैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था, परंपरागत लैंगिक भूमिकाएँ, सांस्कृतिक विश्वास और सामाजिक अपेक्षाएँ बालिकाओं की स्थिति को किस प्रकार प्रभावित करती हैं ? कई बार समाज बालिकाओं की सहनशीलता को स्वाभाविक मानकर उनके प्रति अन्याय को सामान्य कर देता है, जिससे उनकी जिजीविषा का दुरुपयोग होता है। अतः जिजीविषा को केवल सहनशीलता नहीं, बल्कि आत्मनिर्णय और परिवर्तन की शक्ति के रूप में समझना आवश्यक है। यह शोध–पत्र मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों–पुस्तकों, शोध–पत्रों, रिपोर्टों और सामाजिक अध्ययनों–पर आधारित एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इसका उद्देश्य बालिकाओं की स्थिति को करुणा या सहानुभूति के बजाय अधिकार, सम्मान और सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना है। अध्ययन का निष्कर्ष यह इंगित करता है कि यदि जैविक तथ्यों की वैज्ञानिक समझ, लैंगिक समानता की चेतना और सकारात्मक सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन को बढ़ावा दिया जाए, तो बालिकाओं की जिजीविषा न केवल व्यक्तिगत सशक्तिकरण का माध्यम बनेगी, बल्कि समाज के समग्र विकास की दिशा में एक प्रभावी शक्ति के रूप में उभरेगी।

मुख्य शब्दः *जैविक उत्पत्ति, जिजीविषा, लैंगिक भेदभाव और सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में बेटियाँ आदि.*

प्रस्तावना

मानव समाज में लिंग (*Gender*) की अवधारणा केवल जैविक संरचना अथवा गुणसूत्रीय विभाजन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक बहुस्तरीय सामाजिक–सांस्कृतिक निर्माण है, जिसकी जड़ मनोवैज्ञानिक पहचान, सामाजिक भूमिकाओं, सांस्कृतिक प्रतीकों और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में गहराई तक समाहित हैं। मानव जैविक रूप से जन्म के समय निर्धारित लिंग के साथ सामाजिक वातावरण में प्रवेश करते ही अनेक अर्थों, अपेक्षाओं और मानकों से जुड़ जाता है, जो व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन–पथ को प्रभावित करते हैं। विशेष रूप से बेटियों के संदर्भ में यह प्रक्रिया और अधिक जटिल हो जाती है। पारंपरिक समाजों में बेटियों का जन्म केवल एक जैविक घटना न होकर सामाजिक मूल्यांकन का विषय बन जाता है, जहाँ उनके अस्तित्व को उपयोगिता, उत्तरदायित्व और सामाजिक प्रतिष्ठा के मानकों से मापा जाता है। परिवार, समुदाय और व्यापक सामाजिक संरचनाएँ बेटियों के लिए विशिष्ट आचार–संहिता, व्यवहार, नियम और सीमाएँ निर्धारित करती हैं, जिनका सीधा प्रभाव उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, आत्मनिर्णय, गतिशीलता और अवसरों पर पड़ता है। इतिहास साक्षी है, कि विभिन्न कालखंडों में सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों, धार्मिक व्याख्याओं और सांस्कृतिक परंपराओं ने बेटियों की स्थिति को कभी सम्मान, तो कभी उपेक्षा के धरातल पर रखा है। इस क्रम में लैंगिक भेदभाव केवल व्यक्तिगत दृष्टिकोण का परिणाम न होकर संस्थागत और संरचनात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होता रहता है। आधुनिक युग में संवैधानिक समानता, शिक्षा और अधिकारों के विस्तार के बावजूद सामाजिक चेतना में व्याप्त रूढ़ियाँ अभी भी बेटियों के जीवन अनुभवों को सीमित करती हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है, कि बेटियों की स्थिति का अध्ययन केवल जैविक या कानूनी ढाँचे में न करके, जैविक उत्पत्ति, जिजीविषा, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक चेतना के समन्वित परिप्रेक्ष्य में किया जाए। यह शोध इसी बहुआयामी दृष्टिकोण को अपनाते हुए बेटियों के अस्तित्व, संघर्ष और संभावनाओं का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है, कि किस प्रकार सामाजिक–सांस्कृतिक संरचनाएँ बेटियों के जीवन अवसरों, सम्मान और स्वतंत्रता को आकार देती हैं।

अध्ययन की आवश्यकता

यह अध्ययन इसलिए आवश्यक है, क्योंकि जैविक उत्पत्ति से जुड़े तथ्यों को अक्सर सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ भ्रमित कर दिया जाता है, जिससे बेटियों के प्रति भेदभाव को "प्राकृतिक" मान लिया जाता है। जिजीविषा (जीवन जीने की प्रबल इच्छा) के बावजूद बेटियाँ सामाजिक

उपेक्षा, असमान अवसर और लैंगिक पूर्वाग्रह को झेलती हैं। इस अध्ययन से जैविक सत्य और सामाजिक निर्मित धारणाओं के बीच स्पष्ट भेद समझने में सहायता मिलती है।

अध्ययन का महत्व

यह अध्ययन बेटियों से जुड़े लैंगिक भेदभाव की जड़ों को जैविक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक संदर्भों में उजागर करता है। इससे लैंगिक समानता, नारी सशक्तिकरण और संवैधानिक मूल्यों को सुदृढ़ करने में वैचारिक आधार मिलता है। साथ ही यह शिक्षा, सामाजिक नीति निर्माण और जन–जागरूकता कार्यक्रमों के लिए उपयोगी दृष्टिकोण प्रदान करता है।

अध्ययन का औचित्य

वर्तमान अध्ययन जैविक उत्पत्ति (*Biological Origin*), जिजीविषा (*Survival Instinct*), लैंगिक भेदभाव तथा सामाजिक–सांस्कृतिक संरचनाओं के अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास करता है। भारतीय समाज में बेटियों के प्रति दृष्टिकोण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पितृसत्तात्मक मान्यताओं से प्रभावित रहा है, जिसके कारण जैविक समानता के बावजूद सामाजिक असमानताएँ उत्पन्न हुई हैं। यह अध्ययन जैविक तथ्यों और सामाजिक व्यवहार के बीच मौजूद विरोधाभासों का विश्लेषण कर यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार सांस्कृतिक मान्यताएँ बेटियों की जिजीविषा, पहचान और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करती हैं। अतः यह शोध लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय और नीतिगत हस्तक्षेपों की दिशा में वैचारिक एवं व्यावहारिक योगदान देने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अनुसंधान समस्या

जैविक उत्पत्ति, जिजीविषा, लैंगिक भेदभाव और सामाजिक/सांस्कृतिक संदर्भ में बेटियाँ; एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।

साहित्य समिक्षा

स्वदेशी अध्ययन

1. *कुमार, वी. एवं शर्मा, आर.* (2016) ने अपने अध्ययन में भारत में बालिकाओं के प्रति लैंगिक भेदभाव को जैविक अज्ञानता और सामाजिक–सांस्कृतिक रूढ़ियों से जोड़ा है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया, कि लिंग–निर्धारण की वैज्ञानिक प्रक्रिया के बावजूद समाज में आज भी पुत्र–प्राथमिकता बनी हुई है, जिससे बालिकाओं को शिक्षा, पोषण और अवसरों से वंचित किया जाता है। अध्ययनकर्त्ताओं ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि विपरीत परिस्थितियों में बालिकाओं द्वारा प्रदर्शित जिजीविषा सामाजिक दबावों के प्रतिरोध का एक सशक्त रूप है।

2. *सिंह, मीना (2018)* के अध्ययन का केंद्र बिंदु ग्रामीण भारत की बालिकाएँ हैं। अध्ययन में पाया गया; कि पारिवारिक और सांस्कृतिक प्रतिबंधों के बावजूद बालिकाएँ शिक्षा और आत्मनिर्भरता के माध्यम से अपनी जिजीविषा को सशक्त बना रही हैं। शोध यह दर्शाता है कि सामाजिक–सांस्कृतिक भेदभाव बालिकाओं के विकास में बाधक तो है, किंतु वही संघर्ष उनकी जीवन–संघर्ष क्षमता को भी सुदृढ़ करता है।

विदेशी अध्ययन

3. *Sen. A. (1999)* ने अपने प्रसिद्ध कार्य *"Development as Freedom"* में लैंगिक असमानता को सामाजिक न्याय और मानव विकास के संदर्भ में विश्लेषित किया है। उन्होंने "Missing Women" की अवधारणा के माध्यम से यह स्पष्ट किया, कि जैविक समानता के बावजूद सामाजिक–सांस्कृतिक भेदभाव महिलाओं और बालिकाओं के अस्तित्व को प्रभावित करता है। सेन के अनुसार, शिक्षा और स्वतंत्रता महिलाओं की जिजीविषा को सामाजिक परिवर्तन की शक्ति में बदल देती है।

4. *Nussbaum. M. C. (2011)* – नस्बाम ने *Capabilities Approach* के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि स्त्रियों और बालिकाओं की जिजीविषा उनकी क्षमताओं (*Capabilities*) के विकास से जुड़ी है। उनका अध्ययन बताता है कि जब सामाजिक–सांस्कृतिक संरचनाएँ लैंगिक भेदभाव को बढ़ावा देती हैं, तब भी महिलाएँ अपनी आँतरिक शक्ति और संघर्ष क्षमता के माध्यम से गरिमापूर्ण जीवन की ओर अग्रसर रहती हैं।

शोध शब्दावली/परिभाषा :– शब्द–परिभाषाएँ

जैविक उत्पत्ति

जैविक उत्पत्ति से आशय मानव में लिंग–निर्धारण की उस वैज्ञानिक प्रक्रिया से है, जो निषेचन के समय गुणसूत्रों (X और Y) के संयोजन द्वारा निर्धारित होती है। इस अध्ययन में जैविक उत्पत्ति का प्रयोग यह स्पष्ट करने हेतु किया गया है कि बेटी या बेटा होने का निर्धारण प्राकृतिक एवं जैविक प्रक्रिया है, न कि सामाजिक या मातृ–उत्तरदायित्व का परिणाम।

जिजीविषा

जिजीविषा से तात्पर्य व्यक्ति की उस आंतरिक शक्ति से है, जिसके माध्यम से वह जीवन की कठिन, प्रतिकूल और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने की इच्छा, साहस और आत्मबल बनाए रखता है। इस अध्ययन में जिजीविषा को बालिकाओं की जीवन–संघर्ष क्षमता और आत्मसंघर्षशीलता के रूप में समझा गया है।

लैंगिक भेदभाव

लैंगिक भेदभाव का अर्थ है लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ असमान, अन्यायपूर्ण या पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाना। इस अध्ययन में लैंगिक भेदभाव से आशय बालिकाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसर, निर्णय–स्वतंत्रता और सामाजिक सम्मान के क्षेत्रों में होने वाली असमानताओं से है।

सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ

सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ से तात्पर्य समाज में प्रचलित परंपराओं, मान्यताओं, मूल्यों, रीति–रिवाजों, पारिवारिक संरचनाओं और सामाजिक अपेक्षाओं से है, जो व्यक्ति के विचारों, व्यवहार और जीवन–अवसरों को प्रभावित करते हैं। इस अध्ययन में यह संदर्भ बेटियों की स्थिति और जिजीविषा के निर्माण में प्रभावी कारक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

बेटियाँ

इस अध्ययन में "बेटियाँ" शब्द का प्रयोग समाज में जन्मी स्त्री–लिंग की संतान के लिए किया गया है, जिनकी सामाजिक स्थिति, अवसर और अधिकार पारंपरिक रूप से सीमित रहे हैं। यहाँ बेटियों को केवल जैविक इकाई नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय दृष्टि से विश्लेषित किया गया है।

विश्लेषणात्मक अध्ययन

विश्लेषणात्मक अध्ययन से आशय उस शोध–पद्धति से है, जिसमें उपलब्ध तथ्यों, सामाजिक यथार्थों और अवधारणाओं का तार्किक, तुलनात्मक और आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाता है। इस अध्ययन में जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों के अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

- बेटियों की जैविक उत्पत्ति से जुड़ी वैज्ञानिक सच्चाइयों का विश्लेषण करना।
- बालिकाओं में निहित जिजीविषा (जीवन–संघर्ष की क्षमता) को सामाजिक संदर्भ में समझना।
- समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव के रूपों और कारणों की पहचान करना।
- बेटियों की स्थिति पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करना।
- बेटियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हेतु सकारात्मक सामाजिक चेतना की आवश्यकता को रेखांकित करना।

शोध अध्ययन विधि

इस अध्ययन में गुणात्मक (*Qualitative*) शोध–पद्धति का प्रयोग किया गया है। साथ ही, आवश्यकतानुसार सैद्धांतिक एवं व्याख्यात्मक (*Theoretical–Interpretative*) दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिससे सामाजिक–सांस्कृतिक यथार्थ को गहराई से समझा जा सके।

अध्ययन

बेटियों की जैविक उत्पत्ति से जुड़ी वैज्ञानिक सच्चाइयों का अध्ययन।

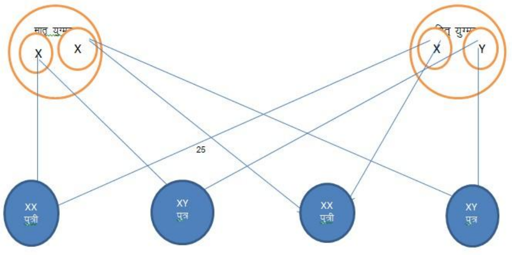

मानव प्रजाति में लिंग निर्धारण एक पूर्णतः जैविक और वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसका संबंध भ्रुण के विकास और गुणसूत्रीय संरचना से है। जैविक दृष्टि से यह स्पष्ट तथ्य है कि बेटी या बेटा होने का निर्णय पिता के नर युग्मकों के गुणसूत्रों द्वारा होता है, न कि माता के द्वारा। यह तथ्य आधुनिक जीव–विज्ञान और आनुवंशिकी (*Genetics*) द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। मानव कोशिकाओं में कुल 23 जोड़े गुणसूत्र होते हैं, जिनमें से *एक*

जोड़ा लैंगिक गुणसूत्र (*Sex Chromosomes*) होता है। स्त्री के सभी जनन–युग्मकों / अंडाणुओं (*Ovum*) में सदैव X गुणसूत्र ही होता है, जबकि पुरुष के नर–जनन कोशिकाओं / शुक्राणु (*Sperm*) दो प्रकार के होते हैं–एक X गुणसूत्र वाला और दूसरा Y गुणसूत्र वाला। जब X गुणसूत्र वाला शुक्राणु अंडाणु से निषेचित होता है, तो भ्रूण XX (पुत्री / बेटी) होता है; और जब Y गुणसूत्र वाला शुक्राणु निषेचन करता है, तो भ्रूण XY (पुत्र / बेटा) होता है। इस प्रकार वैज्ञानिक रूप से यह स्पष्ट है, कि बेटी का जन्म माता की नहीं, पिता के जैविक योगदान पर निर्भर करता है। भ्रूण के प्रारंभिक चरण में लगभग 6 / 7 सप्ताह तक सभी भ्रूणों की संरचना समान होती है। इसके पश्चात हार्मोनल प्रभावों के कारण लैंगिक विभेदन (विदलन) (*Sex Differentiation*) की प्रक्रिया आरंभ होती है। Y गुणसूत्र की उपस्थिति में टेस्टोस्टेरोन हार्मोन सक्रिय होकर पुरुष अंगों का विकास करता है, जबकि Y गुणसूत्र के अभाव में भ्रूण स्वाभाविक रूप से स्त्री शरीर संरचना की ओर विकसित होता है। यह दर्शाता है कि स्त्री शरीर कोई 'कमजोर' या 'अपूर्ण' संरचना नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और स्वाभाविक जैविक रूप है।

वैज्ञानिक शोध यह भी स्पष्ट करते हैं, कि स्त्री भ्रूण में जैविक सहनशीलता और रोग प्रतिरोधक क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है। जन्म से पूर्व और शैशवावस्था में लड़कियों की जीवित रहने की दर कई अध्ययनों में अधिक पाई गई है। यह तथ्य बेटियों की जैविक–क्षमता (जिजीविषा) को रेखांकित करता है। अतः यह कहना पूर्णतः वैज्ञानिक सत्य के विरुद्ध है कि बेटी का जन्म किसी दोष, दुर्भाग्य या कमजोरी का परिणाम है। बेटियों की जैविक उत्पत्ति प्राकृतिक, संतुलित और वैज्ञानिक नियमों पर आधारित है। समाज में फैली भ्रांतियाँ न केवल विज्ञान विरोधी हैं, बल्कि मानवीय मूल्यों के भी प्रतिकूल हैं। वैज्ञानिक सच्चाइयों की सही समझ ही बेटियों के प्रति सम्मानजनक और समान दृष्टिकोण विकसित करने का आधार बन सकती है।

बालिकाओं में निहित जिजीविषा (जीवन–संघर्ष की क्षमता) को सामाजिक संदर्भ में समझना

जिजीविषा का अर्थ है, जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी आगे बढ़ते रहने की अदम्य इच्छा, संघर्ष करने की क्षमता और आत्मबल। बालिकाओं में यह जिजीविषा जन्मजात रूप से विद्यमान होती है, किंतु सामाजिक संरचनाएँ, सांस्कृतिक मान्यताएँ और पारिवारिक वातावरण इसे या तो पोषित करते हैं या दबा देते हैं। सामाजिक संदर्भ में बालिकाओं की जिजीविषा को समझना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उनका जीवन प्रारंभ से ही असमानताओं, अपेक्षाओं और संघर्षों से घिरा रहता है। भारतीय समाज में बालिकाएँ अनेक स्तरों पर चुनौतियों का सामना करती हैं– लैंगिक भेदभाव, शिक्षा में असमान अवसर, घरेलू उत्तरदायित्वों का बोझ, बाल विवाह, सुरक्षा संबंधी चिंताएँ तथा निर्णयों में सीमित भागीदारी। इन सबके बावजूद, बालिकाएँ अक्सर विपरीत परिस्थितियों में भी साहस, सहनशीलता और संघर्षशीलता का परिचय देती हैं। यही उनकी जिजीविषा का प्रमाण है। सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो बालिकाओं की जिजीविषा केवल व्यक्तिगत गुण नहीं, बल्कि सामाजिक अनुभवों से निर्मित होती है। जब एक बालिका सीमित संसाधनों में शिक्षा प्राप्त करने का प्रयास करती है, घरेलू कार्यों के साथ पढ़ाई संतुलित करती है, या सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देती है, तब उसकी जिजीविषा और अधिक सशक्त होती है। संघर्ष उसके व्यक्तित्व को कुचलता नहीं, बल्कि कई बार उसे और अधिक दृढ़ बनाता है। यद्यपि, यह भी सत्य है कि समाज कई बार बालिकाओं की इसी जिजीविषा का दुरुपयोग करता है। ***"लड़कियाँ सहनशील होती हैं"*** जैसी धारणा उनके ऊपर अन्याय को सामान्य बना देती है। इससे उनकी संघर्ष क्षमता को सराहने के बजाय, उस पर बोझ डाल दिया जाता है। अतः जिजीविषा को महज़ सहनशीलता के रूप में नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय और परिवर्तन की शक्ति के रूप में समझना आवश्यक है। शिक्षा बालिकाओं की जिजीविषा को सकारात्मक दिशा देने का सबसे प्रभावी माध्यम है। शिक्षित बालिका न केवल अपने अधिकारों को पहचानती है, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस भी अर्जित करती है। परिवार और समाज का सहयोग मिलने पर यही जिजीविषा नेतृत्व, नवाचार और सामाजिक परिवर्तन में परिवर्तित हो सकती है। आज की बालिकाएँ खेल, विज्ञान, साहित्य, राजनीति और उद्यमिता जैसे क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। यह उनकी अंतर्निहित जीवन–संघर्ष की क्षमता का जीवंत उदाहरण है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज बालिकाओं को *"संघर्ष सहने वाली"* नहीं, बल्कि *"संघर्ष बदलने वाली"* के रूप में देखें।

निष्कर्षतः *बालिकाओं में निहित जिजीविषा एक सामाजिक पूँजी है। यदि इसे समान अवसर, सुरक्षा, शिक्षा और सम्मान का आधार मिले, तो यही जिजीविषा न केवल उनके जीवन को बल्कि पूरे समाज को अधिक मानवीय, न्यायपूर्ण और प्रगतिशील बना सकती है।*

समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव के रूप और कारणों की पहचान

लैंगिक भेदभाव समाज में व्याप्त एक ऐसी सामाजिक समस्या है, जिसमें व्यक्ति के साथ उसके लिंग के आधार पर असमान व्यवहार किया जाता है। यह भेदभाव केवल स्त्री और पुरुष के बीच ही नहीं, बल्कि सामाजिक भूमिकाओं, अधिकारों, अवसरों और संसाधनों के वितरण में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समाज की संरचना, परंपराएँ, सांस्कृतिक मान्यताएँ और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ लैंगिक भेदभाव को जन्म देती हैं और उसे बनाए रखती हैं। लैंगिक भेदभाव के अनेक रूप समाज में देखने को मिलते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियों को लड़कों की तुलना में कम अवसर दिए जाते हैं। कई परिवारों में बालिकाओं की शिक्षा को अनावश्यक या द्वितीयक माना जाता है, जिसके परिणामस्वरूप विद्यालय छोड़ने की दर अधिक होती है। स्वास्थ्य और पोषण के क्षेत्र में भी भेदभाव स्पष्ट है, जहाँ लड़कों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएँ और पोषण उपलब्ध कराया जाता है। आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं को समान कार्य के लिए पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है, साथ ही रोजगार और पदोन्नति के अवसरों में भी असमानता देखी जाती है।

सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर लैंगिक भेदभाव दहेज प्रथा, बाल विवाह, घरेलू हिंसा, संपत्ति और उत्तराधिकार में असमान अधिकारों के रूप में प्रकट होता है। निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी सीमित रहती है, जिससे उनकी स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता प्रभावित होती है। राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम होता है, जो लैंगिक असमानता को दर्शाता है। लैंगिक भेदभाव के अनेक कारण कार्यरत करते हैं। सबसे प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें पुरुष को श्रेष्ठ और महिला को अधीन माना जाता है। परंपरागत सोच और रूढ़िवादी मान्यताएँ यह धारणा स्थापित करती हैं कि स्त्री का मुख्य कार्य घर–परिवार तक सीमित होना चाहिए। धार्मिक और सांस्कृतिक व्याख्याओं का ***एकांगी*** उपयोग भी भेदभाव को बढ़ावा देता है। इसके अतिरिक्त अशिक्षा, गरीबी और आर्थिक निर्भरता महिलाओं को कमजोर स्थिति में बनाए रखती है। मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति भी लैंगिक रूढ़ियों को मजबूत करने में भूमिका निभाते हैं। फिल्मों, विज्ञापनों और साहित्य में स्त्रियों की प्रस्तुति अक्सर सीमित और *stereotypical* होती है, जिससे समाज में असमान धारणाएँ बनी रहती हैं। कानूनी जागरूकता की कमी और कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन न होना भी लैंगिक भेदभाव को बनाए रखने वाला एक महत्वपूर्ण कारण है।

अतः समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव के रूपों और कारणों की पहचान करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि समानता, न्याय और मानवाधिकारों पर आधारित समाज का निर्माण किया जा सके। शिक्षा, जागरूकता, सामाजिक सुधार और नीतिगत हस्तक्षेप के माध्यम से ही लैंगिक भेदभाव को समाप्त किया जा सकता है।

बेटियों की स्थिति पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन : –

समाज में बेटियों की स्थिति केवल जैविक लिंग के आधार पर निर्धारित नहीं होती, बल्कि उस पर गहरे रूप से सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। परिवार, समुदाय, परंपराएँ, मान्यताएँ, धार्मिक विश्वास, आर्थिक संरचना तथा सामाजिक मूल्य– सभी मिलकर बेटियों के जीवन, अवसरों और अधिकारों को आकार देते हैं। यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है, कि बेटियों की सामाजिक स्थिति एक सामाजिक–सांस्कृतिक निर्माण है, न कि प्राकृतिक या जैविक नियति। सामाजिक कारकों में सबसे प्रमुख भूमिका परिवार संरचना की होती है। पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था में बेटियों को प्रायः आश्रित, कमजोर और पराया धन माना जाता है। परिणामस्वरूप शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और निर्णय–निर्माण में उन्हें सीमित अवसर मिलते हैं। कई परिवारों में अभी भी बेटों को वंशवृद्धि, आर्थिक सहारा और सामाजिक प्रतिष्ठा का माध्यम माना जाता है, जबकि बेटियों को विवाह और घरेलू दायित्वों तक सीमित कर दिया जाता है। इससे बेटियों का आत्म–सम्मान और आत्मनिर्भरता प्रभावित होती है। सांस्कृतिक कारक भी बेटियों की स्थिति निर्धारण में अत्यंत प्रभावशाली हैं। समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, परंपराएँ और लोक–मान्यताएँ बेटियों के प्रति भेदभाव को बनाए रखती हैं। दहेज प्रथा, बाल विवाह, पर्दा–प्रथा तथा विवाह के बाद बेटी को 'पराया' मानने की सोच सांस्कृतिक रूप से गहरी जड़ें रखती है। अनेक कहावतें, लोकगीत और सामाजिक कथन बेटियों को बोझ या कमजोरी के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिससे सामाजिक चेतना में लैंगिक असमानता स्थायी हो जाती है। धार्मिक और नैतिक धारणाएँ भी सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती हैं। यद्यपि अनेक धार्मिक ग्रंथों में नारी को सम्मान और शक्ति का प्रतीक बताया गया है, परंतु व्यावहारिक जीवन में इन शिक्षाओं की व्याख्या अक्सर पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से की जाती है। इससे बेटियों की स्वतंत्रता, शिक्षा और सामाजिक सहभागिता सीमित होती है। आर्थिक कारक भी सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों से जुड़े होते हैं। गरीबी, बेरोजगारी और सीमित संसाधनों की स्थिति में परिवार बेटियों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर कम निवेश करता है। इसके विपरीत, जब सामाजिक सोच में परिवर्तन और आर्थिक सशक्तिकरण होता है, तब बेटियों की स्थिति में सकारात्मक सुधार देखा जाता है। आधुनिक शिक्षा, मीडिया, कानून और सामाजिक आंदोलनों ने बेटियों की स्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। महिला शिक्षा, कानूनी अधिकार, आत्मनिर्भरता और लैंगिक समानता की अवधारणाओं ने पारंपरिक सोच को

चुनौती दी है। फिर भी सामाजिक–सांस्कृतिक जड़ता के कारण परिवर्तन की गति धीमी बनी हुई है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बेटियों की स्थिति समाज की सामूहिक मानसिकता, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक संरचनाओं का प्रतिफल है। जब तक सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में समानता, संवेदनशीलता और न्यायपूर्ण सोच विकसित नहीं होती, तब तक बेटियों की वास्तविक सशक्तिकरण संभव नहीं है। इसलिए समाज के हर स्तर पर जागरूकता, शिक्षा और मूल्य–परिवर्तन की आवश्यकता है।

बेटियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हेतु सकारात्मक सामाजिक चेतना की आवश्यकता :

किसी भी समाज की प्रगति और सभ्यता का स्तर उस समाज में बेटियों की स्थिति से आँकलित किया जा सकता है। यद्यपि आधुनिक समय में शिक्षा, कानून और तकनीकी विकास के कारण बेटियों की स्थिति में सुधार हुआ है, फिर भी उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में पूर्ण परिवर्तन अभी तक नहीं हो पाया है। समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव, रूढ़िवादी मान्यताएँ और पितृसत्तात्मक सोच बेटियों के विकास में प्रमुख बाधा बनी हुई हैं। ऐसे में बेटियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए सकारात्मक सामाजिक चेतना का निर्माण अत्यंत आवश्यक है। सकारात्मक सामाजिक चेतना से तात्पर्य ऐसी सामूहिक सोच से है, जो समानता, सम्मान और न्याय के मूल्यों पर आधारित हो। यह चेतना समाज के प्रत्येक स्तर– परिवार, विद्यालय, समुदाय और राष्ट्र–में विकसित होनी चाहिए। परिवार प्रथम सामाजिक संस्थान है जहाँ बच्चे सामाजिक मूल्यों को सीखते हैं। यदि परिवार में बेटियों को बेटों के समान प्रेम, शिक्षा और अवसर दिए जाएँ, तो समाज में समानता की नींव मजबूत हो सकती है। इसके विपरीत, यदि घर के भीतर ही भेदभाव हो, तो समाज में परिवर्तन की कल्पना अधूरी रह जाती है। शिक्षा सकारात्मक सामाजिक चेतना के विकास का सबसे प्रभावी माध्यम है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में लैंगिक समानता, संवैधानिक अधिकारों और मानवीय मूल्यों की शिक्षा देकर छात्रों में संवेदनशील दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है। शिक्षित समाज में बेटियों को बोझ नहीं, बल्कि मानवीय–संसाधन और शक्ति के रूप में देखा जाता है। शिक्षा न केवल बेटियों को सशक्त बनाती है, बल्कि समाज की सोच को भी बदलती है। मीडिया और संचार साधनों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। टेलीविजन, सिनेमा, समाचार पत्र और सोशल मीडिया समाज की मानसिकता को प्रभावित करते हैं। यदि मीडिया में बेटियों को सशक्त, आत्मनिर्भर और सम्मानजनक भूमिका में प्रस्तुत किया जाए, तो सामाजिक दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव संभव है। इसके विपरीत, रूढ़–छवियाँ और भेदभावपूर्ण प्रस्तुतियाँ नकारात्मक सोच को और गहरा करती हैं। कानून और सरकारी नीतियाँ भी सामाजिक चेतना को दिशा देती हैं। बेटी बचाओ– बेटी पढ़ाओ, शिक्षा का अधिकार, संपत्ति में समान अधिकार जैसे प्रयास समाज को स्पष्ट संदेश देते हैं कि बेटियाँ समाज का अभिन्न और समान अधिकारों वाली इकाई हैं। यद्यपि कानून तभी प्रभावी होते हैं जब समाज उन्हें स्वीकार करे और व्यवहार में उतारे। अंततः यह स्पष्ट है कि बेटियों के प्रति दृष्टिकोण में वास्तविक परिवर्तन केवल कानून या योजनाओं से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए सकारात्मक सामाजिक चेतना का विकास आवश्यक है। जब समाज बेटियों को सम्मान, अवसर और समानता देगा, तभी एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और सशक्त समाज का निर्माण संभव होगा। यह परिवर्तन सामूहिक प्रयास और निरंतर जागरूकता से ही संभव है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि बेटियों की स्थिति को समझने के लिए जैविक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनो–वैज्ञानिक सभी आयामों को समग्र रूप में देखना आवश्यक है। जैविक दृष्टि से यह निर्विवाद तथ्य है कि लिंग निर्धारण एक पूर्णतः वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें माता की कोई भूमिका नहीं होती, अपितु यह पिता के गुणसूत्रों द्वारा निर्धारित होता है। इसके बावजूद भारतीय समाज में आज भी पुत्र–प्राप्ति की जिम्मेदारी और दबाव प्रायः महिलाओं पर डाला जाता है, जो वैज्ञानिक अज्ञानता और पितृसत्तात्मक सोच का प्रत्यक्ष प्रमाण है। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि जैविक समानता के बावजूद सामाजिक–सांस्कृतिक संरचनाएँ बेटियों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करती हैं। जन्म से पूर्व लिंग–चयन, जन्म के बाद पोषण व शिक्षा में असमानता, घरेलू दायित्वों का अधिक बोझ, सुरक्षा संबंधी प्रतिबंध तथा निर्णय–निर्माण में सीमित भागीदारी–ये सभी बेटियों के जीवन को निरंतर संघर्षपूर्ण बनाते हैं। यह लैंगिक भेदभाव न केवल उनके अवसरों को सीमित करता है, बल्कि उनके व्यक्तित्व विकास को भी प्रभावित करता है। इन प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य बेटियों में निहित जिजीविषा (जीवन–संघर्ष की क्षमता) एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष के रूप में उभरकर सामने आती है। अध्ययन से स्पष्ट है कि बेटियाँ केवल संघर्ष सहने वाली नहीं, बल्कि संघर्षों से शक्ति अर्जित करने वाली होती हैं। सामाजिक बंधनों, संसाधनों की कमी और मानसिक दबावों के बावजूद वे शिक्षा, आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान की दिशा में निरंतर प्रयासरत रहती हैं। यही जिजीविषा उन्हें आँतरिक रूप से सशक्त बनाती है।

यद्यपि यह भी सत्य है कि समाज कई बार बेटियों की इसी जिजीविषा का दुरुपयोग करता है। "लड़कियाँ सहनशील होती हैं" जैसी सामाजिक मान्यताएँ उनके ऊपर अन्याय को वैध बना देती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जिजीविषा को केवल सहनशीलता नहीं, बल्कि अधिकार–चेतना, आत्मनिर्णय और प्रतिरोध की शक्ति के रूप में समझने की आवश्यकता है। अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि शिक्षा और सकारात्मक सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण बेटियों की जिजीविषा को रचनात्मक दिशा प्रदान करते हैं। शिक्षित और जागरूक बेटियाँ न केवल अपने अधिकारों को पहचानती हैं, बल्कि सामाजिक कुरीतियों को चुनौती देने का साहस भी विकसित करती हैं। जब परिवार और समाज सहयोगी भूमिका निभाते हैं, तब यही जिजीविषा नेतृत्व, नवाचार और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन जाती है।

निष्कर्षत; बेटियाँ जैविक रूप से किसी भी प्रकार से कमजोर नहीं हैं, उन्हें कमजोर बनाती हैं– सामाजिक धारणाएँ और भेदभावपूर्ण संरचनाएँ। यदि समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाए, लैंगिक समानता को स्वीकार करे और बेटियों को सम्मान, सुरक्षा, शिक्षा तथा समान अवसर प्रदान करे, तो उनकी जिजीविषा न केवल उनके व्यक्तिगत जीवन को सशक्त बनाएगी, बल्कि समाज को अधिक न्यायपूर्ण, संवेदनशील और प्रगतिशील दिशा में ले जाएगी।

सम्प्राप्तियाँ

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि बेटियों की स्थिति को लेकर समाज में व्याप्त अनेक भ्रांतियाँ जैविक तथ्यों की अज्ञानता और सामाजिक–सांस्कृतिक रूढ़ियों का परिणाम हैं। जैविक दृष्टि से यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध है कि शिशु का लिंग निर्धारण पिता के गुणसूत्रों (X एवं Y) द्वारा होता है, न कि माता द्वारा। इसके बावजूद सामाजिक व्यवहार में पुत्र–पुत्री के जन्म का दायित्व आज भी माँ पर आरोपित किया जाता है, जो लैंगिक भेदभाव की जड़ को और गहरा करता है। यह तथ्य दर्शाता है कि वैज्ञानिक ज्ञान और सामाजिक चेतना के बीच अभी भी व्यापक अंतर विद्यमान है।

अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि जैविक रूप से समान क्षमताओं के बावजूद बेटियों को सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर भिन्न अपेक्षाओं और सीमाओं में बाँध दिया जाता है। शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य, स्वतंत्रता और निर्णय–निर्माण जैसे क्षेत्रों में बेटियों को प्रायः द्वितीयक स्थान दिया जाता है। यह असमानता न केवल उनके बाह्य विकास को प्रभावित करती है, बल्कि उनके आत्मसम्मान और मनोवैज्ञानिक विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है। इसके साथ ही, अध्ययन यह दर्शाता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद बेटियों में जिजीविषा, अर्थात् जीवन–संघर्ष की क्षमता, अत्यंत प्रबल रूप में विद्यमान रहती है। घरेलू दायित्वों, सामाजिक प्रतिबंधों, आर्थिक सीमाओं और लैंगिक भेदभाव के बीच भी बेटियाँ शिक्षा, आत्मनिर्भरता और पहचान के लिए निरंतर संघर्ष करती हैं। यह जिजीविषा केवल व्यक्तिगत साहस का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक दबावों के बीच विकसित हुई एक सशक्त आँतरिक शक्ति है।

अध्ययन की एक महत्त्वपूर्ण प्राप्ति यह भी है कि समाज कई बार बेटियों की इसी जिजीविषा का दुरुपयोग करता है। "लड़कियाँ सहनशील होती हैं" जैसी सांस्कृतिक धारणाएँ उनके प्रति होने वाले अन्याय को सामान्य बना देती हैं। परिणामस्वरूप, उनसे अधिक त्याग, अधिक सहनशीलता और अधिक समायोजन की अपेक्षा की जाती है, जबकि उनके अधिकारों और आकाँक्षाओं की उपेक्षा होती है।

सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में यह भी स्पष्ट हुआ है, कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था बेटियों की पहचान को पारिवारिक सम्मान, विवाह और मातृत्व तक सीमित कर देती है। इससे उनकी जिजीविषा को सृजनात्मक और परिवर्तनकारी शक्ति बनने का पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाता। यद्यपि, जहाँ शिक्षा, पारिवारिक सहयोग और सकारात्मक सामाजिक वातावरण उपलब्ध होता है, वहाँ यही जिजीविषा नेतृत्व, आत्मनिर्भरता और सामाजिक परिवर्तन में परिवर्तित होती दिखाई देती है।

अंततः अध्ययन यह निष्कर्षात्मक संकेत देता है कि बेटियों की जैविक उत्पत्ति को लेकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण, उनकी जिजीविषा को समझने की संवेदनशीलता और लैंगिक समानता आधारित सामाजिक–सांस्कृतिक चेतनाकृइन तीनों का समन्वय अत्यंत आवश्यक है। जब समाज बेटियों को बोझ नहीं, बल्कि सामर्थ्य और संभावनाओं से युक्त मानव संसाधन के रूप में स्वीकार करेगा, तभी उनकी जिजीविषा व्यक्तिगत उन्नति के साथ–साथ सामाजिक विकास की भी आधारशिला बन सकेगी।

संदर्भ

1. Beteille, A. (2002). Caste] class and power: Changing patterns of stratification in a Tanjore village. Oxford University Press.
2. Desai, N. & Thakkar, U. (2001). Women in Indian society. National Book Trust.
3. Karve, I. (1965). Kinship organization in India. Asia Publishing House.

4. Kumar, K. (2014). Politics of education in colonial India. Routledge India.
5. Sarkar, T. (2001). Hindu wife, Hindu nation: Community, religion and cultural nationalism. Permanent Black.
6. Sen, A. (1999). Development as freedom. Oxford University Press.
7. Sharma, R. N., & Sharma, R. K. (2015). Child psychology. Atlantic Publishers.
(ftthfo"kk vkSj fodklkRed ifjçs{;)
8. Singh, Y. (2007). Modernization of Indian tradition. Rawat Publications.fons'kh lanHkZ % &
9. Beauvoir, S. de. (1952). The second sex (H. M. Parshley, Trans. Vintage Books
(Original work published 1949)
10. Bowlby, J. (1988). A secure base: Parent & child attachment and healthy human development. Basic Books. ¼tSfod&euksoSKkfud vk/kkj½
11. Gilligan, C. (1982). In a different voice: Psychological theory and womens development. Harvard University Press.
12. Mead, M. (1935). Sex and temperament in three primitive societies. William Morrow & Company.
13. Nussbaum, M. C. ¼2011½- Creating capabilities: The human development approach. Harvard University Press.
14. Oakley, A. (1972). Sex, gender and society. Temple Smith.
15. Resnick, B., Gwyther, L. P., & Roberto, K. A. (2011). Resilience in aging: Concepts, research, and outcomes. Springer
¼ftthfo"kk @ resilience dh lS)kafrd i`"BHkwfe½
16. 15.UNICEF . (2011) . The state of the world’s children: Adolescence– An age of opportunity. UNICEF Publications.